श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

श्रीमद्भगवद्गीता षोडशो अध्याय

पार्थ सारथी ने समझाया धर्म -कर्म का ज्ञान,
मानव जीवन सफल बना ले गीता अमृत मान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।

देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

अन्तर्यामी नारायण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओं का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय के साधन वेद-पुराणों का पाठ करना चाहिये।

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।

प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

जिन भगवान के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण, उनके चरणों में प्रणति सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुःखों को शांत कर देती है, उन्हीं परम -तत्वस्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूं।

श्रीमद्भगवद्गीतायां(न्)

षोडशोध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अभयं(म्) सत्त्वसं(म्)शुद्धिर्- ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।

दानं(न्) दमश्च यज्ञश्च, स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ 1 ॥

श्री भगवान बोले- भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवान, देवता और गुरुजनों की पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मों का आचरण एवं वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन तथा भगवान् के नाम और गुणों का कीर्तन, स्वधर्म पालन के लिए कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता।

अहिं(म्)सा सत्यमक्रोधस्- त्यागः(श्) शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं(म्), मार्दवं(म्) ह्रीरचापलम् ॥ 2 ॥

मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, अन्तःकरण की उपरति अर्थात् चित्त की चञ्चलता का अभाव, किसी की भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियों में हेतुरहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी उनमें आसक्ति का न होना, कोमलता, लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव।

तेजः(ह) क्षमा धृतिः(श्) शौच- मद्रोहोनातिमानिता।

भवन्ति सम्पदं(न्) दैवी- मभिजातस्य भारत ॥ 3 ॥

तेज , क्षमा, धैर्य, बाहर की शुद्धि एवं किसी में भी शत्रुभाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव- ये सब तो हे अर्जुन! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं ।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः(फ्) पारुष्यमेव च।

अज्ञानं(ञ्) चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ 4 ॥

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी- ये सब आसुरी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता।

मा शुचः(स्) सम्पदं(न्) दैवी- मभिजातोऽसि पाण्डव ॥ 5 ॥

दैवी सम्पदा मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा बाँधने के लिए मानी गई है। इसलिए हे अर्जुन! तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुआ है।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्- दैव आसुर एव च।

दैवो विस्तरशः(फ्) प्रोक्त, आसुरं(म्) पार्थ में श्रृणु ॥ 6 ॥

हे अर्जुन! इस लोक में भूतों की सृष्टि यानी मनुष्य समुदाय दो ही प्रकार का है, एक तो दैवी प्रकृति वाला और दूसरा आसुरी प्रकृति वाला। उनमें से दैवी प्रकृति वाला तो विस्तारपूर्वक कहा गया, अब तू आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य समुदाय को भी विस्तारपूर्वक मुझसे सुन ।

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।

न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते ॥ 7 ॥

आसुर स्वभाव वाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति- इन दोनों को ही नहीं जानते। इसलिए उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है ॥7॥

असत्यमप्रतिष्ठं(न्) ते, जगदाहुरनीश्वरम्।

अपरस्परसम्भूतं(ङ्), किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ 8 ॥

वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहा करते हैं कि जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वर के, अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न है, अतएव केवल काम ही इसका कारण है। इसके सिवा और क्या है ?

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।

प्रभवन्त्युग्रकर्माणः(ह), क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ 9 ॥

इस मिथ्या ज्ञान को अवलम्बन करके- जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिनकी बुद्धि मन्द है, वे सब अपकार करने वाले क्रुरकर्मी मनुष्य केवल जगत् के नाश के लिए ही समर्थ होते हैं।

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।

मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्-प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ 10 ॥

वे दम्भ, मान और मद से युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर, अज्ञान से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों को धारण करके संसार में विचरते हैं ।

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।

कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः ॥ 11 ॥

तथा वे मृत्युपर्यन्त रहने वाली असंख्य चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, विषयभोगों के भोगने में तत्पर रहने वाले और इतना ही सुख है इस प्रकार मानने वाले होते हैं ।

आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।

ईहन्ते कामभोगार्थ- मन्यायेनार्थसञ्चयान्॥ 12 ॥

वे आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर विषय भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थों का संग्रह करने की चेष्टा करते हैं ।

इदमद्य मया लब्ध- मिमं(म्) प्राप्स्ये मनोरथम्।

इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम् ॥ 13 ॥

वे सोचा करते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथ को प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह हो जाएगा।

असौ मया हतः(श्) शत्रुर्- हनिष्ये चापरानपि।

ईश्वरोऽहमहं(म्) भोगी, सिद्धोऽहं(म्) बलवान्सुखी ॥ 14 ॥

वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा। मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ। मै सब सिद्धियों से युक्त हूँ और बलवान् तथा सुखी हूँ ।

आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।

यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ 15 ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः।

प्रसक्ताः(ख्) कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ 16 ॥

मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्ब वाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और आमोद-प्रमोद करूँगा। इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहने वाला हूँ। तथा अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले मोहरूप जाल से समावृत और विषयभोगों में अत्यन्त आसक्त आसुरलोग महान् अपवित्र नरक में गिरते हैं ।

आत्मसम्भाविताः(स्) स्तब्धा, धनमानमदान्विताः।

यजन्ते नामयज्ञैस्ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥ 17 ॥

वे अपने-आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष धन और मान के मद से युक्त होकर केवल नाममात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से शास्त्रविधिरहित यजन करते हैं ।

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(ञ्) च सं(म्)श्रिताः।

मामात्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ 18 ॥

वे अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादि के परायण और दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करने वाले होते हैं ।

तानहं(न्) द्विषतः(ख्) क्रूरान्- सं(म्)सारेषु नराधमान्।

क्षिपाम्यजस्रमशुभा- नासुरीष्वेव योनिषु ॥ 19 ॥

उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ ।

आसुरीं(यँ) योनिमापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।

मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां(ङ्) गतिम् ॥ 20 ॥

हे अर्जुन! वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर ही जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकों में पड़ते हैं।

त्रिविधं(न्) नरकस्येदं(न्), द्वारं(न्) नाशनमात्मनः।

कामः(ख्) क्रोधस्तथा लोभस्- तस्मादेतत्त्रयं(न्) त्यजेत् ॥ 21 ॥

काम, क्रोध तथा लोभ- ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसको अधोगति में ले जाने वाले हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिए ॥21॥

एतैर्विमुक्तः(ख्) कौन्तेय, तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।

आचरत्यात्मनः(श्) श्रेयस्- ततो याति परां(ङ्) गतिम् ॥ 22 ॥

हे अर्जुन! इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, इससे वह परमगति को जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है ॥22॥

यः(श्) शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।

न स सिद्धिमवाप्नोति, न सुखं(न्) न परां(ङ्) गतिम् ॥ 23 ॥

जो पुरुष शास्त्र विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को ही ।

तस्माच्छास्त्रं(म्) प्रमाणं(न्) ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं(ङ्), कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ 24 ॥

इससे तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से नियत कर्म ही करने योग्य है ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि

श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसं(वँ)वादे

दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः(श्) शांतिः(श्) शांतिः ॥

वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म सभी प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परमात्मा से पूर्ण ही है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है।